साहित्य एवं संस्कृति

साहित्य का उद्देश्य

रणजीत कुमार सिन्हा

साहित्य समाज का दर्पण माना गया है। जिस तरह दर्पण में हम अपने चेहरे को देखते हैं ठीक उसी तरह साहित्य में हम समाज को पाते हैं। साहित्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं होता। साहित्यकार समाज का सजग प्रहरी होता है । वह समाज के नव निर्माण में महती भूमिका अदा करता है। साहित्य किसे माना जाए , किसे नहीं, इस पर प्रेमचंद का विचार महत्वपूर्ण है –"साहित्य उसी रचना को कहेगें, जिसमे कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में युग पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।"[1]

साहित्य की बहुत सारी परिभाषाएँ देखने को मिलती है, पर प्रेमचंद ने साहित्य की जो परिभाषाएँ दी है वह सर्वोत्तम परिभाषा है-" साहित्य जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे वह कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।"[2]

साहित्य किसी जाति, राष्ट्र, समाज की संस्कृति और वैभव का दस्तावेज होती है। उस समाज के लोगों की उनकी परम्पराएं उनके लेखक, चिंतक, विचारकों की मनोभावना को प्रकट करती है। समाज, देश, राष्ट्र की पहचान उसकी साहित्यिक उपलब्धियों पर देखा जाता है। साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब होता है, जो भाव और विचार लोगों के हृदय को स्पंदित करते हैं, उसे ही वह साहित्य में रचते हैं।

साहित्य का उद्देश्य समाज का मार्गदर्शन करना हैं। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में –"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए /उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ।"[3]

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल लोकजागरण का काल था। समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, कुरीतियों, रूढियों का जमकर प्रतिवाद संत कवियों ने किया और समाज में एक आदर्श स्थापित किया था। स्वाधीनता आन्दोलन ने भारत में राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। साहित्य किस तरह हमें सचेत करता है कि क्या सही है, क्या गलत है। देश के नेताओं के प्रति लोगों के विचार भी साहित्य के माध्यम से, कथा-कहानी, कविता, उपन्यास आदि में लेखकों ने चित्रण किया है। नेताओं के चरित्र का चित्रण करते हुए 1933 में प्रेमचंद ने लिखा था- "सभी खद्दर पहन्ने वाले और जेल जाने वाले देवता नहीं हैं, उनमें अक्सर बड़े-बड़े हथकंडे-बाज लोग शामिल है जो जेल भी किसी न किसी स्वार्थ वश गए थे।"[4]

हिंदी साहित्य के माध्यम से राष्ट्र निर्माण या समाज के नवनिर्माण में भारतेंदु युग एवं भारतेंदु मण्डली के लेखकों का महती योगदान है। भारतेंदु अपनी रचना 'देख तुमरी काशी' में धार्मिक रूढ़ियों एवं आडम्बरों पर करारा प्रहार किया है। भारत के नव निर्माण हेतु भारतेंदु का बलिया वाला भाषण महत्वपूर्ण है-"वैष्णव शक्ति इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग

आपस का बैर छोड़ दो यह समय इन झगड़ो का नहीं है। हिन्दू, मुस्लमान, जैन सब आपस में मिलिए। जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो, सबका आदर कीजिए। जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।"[5]

साहित्य समाज को नयी दिशा दे सकता है इसका प्रमाण यह है कि साहित्यकार की एक पुस्तक ही समाज में सामाजिक बदलाव का कारण भी बनती है। इसका प्रमाण रूस तथा फ्रांस की क्रांतियाँ हैं। देश वासियों में राष्ट्र प्रेम की भावना जागृत करने के लिए मैथिलीशरण गुप्त, सिया रामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर, प्रसाद, निराला अज्ञेय इसके प्रमाण है। वर्तमान समय में मूल्य हीनता, संस्कार हीनता, समाज और संस्कार में बदली भ्रष्टता को देखकर अगर साहित्यकार अनदेखा कर रहा है अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए साहित्य को गिरवी रखकर राग गा रहा है तो उसकी साहित्य रचना कूड़ा है।

साहित्य में न तो सामान्य का और न तो मात्र विशिष्ट का ही चित्रण होता है, बल्कि विशिष्ट का ही चित्रण होता है ,बल्कि विशिष्ट के माध्यम से सामान्य का प्रत्यक्षीकरण कराना ही साहित्यकार का कार्य होता है। केवल सामान्य विशेषताओं के आधार पर निर्मित साहित्य निर्जीव होकर अपनी विश्वसनीयता खो देता है। समाज सत्य रचना के अर्थ तत्व का मूल और नियामक होता है। साहित्य की मूल-प्रकृति राजनीति की अगुआई करने में नहीं ,बल्कि उससे एकरूपता प्राप्त करने और स्वतंत्र ढंग से विकसित होने में हैं। साहित्य ही समाज को दिशा प्रदान कर सकता है। इसे प्रेमचंद बहुत पहले ही समझ चुके थे। इसलिए वे लिखते हैं- "साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफ़िल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है-उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।"[6]

भारतीय नवजागरण का मूल स्वर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध था। इसके कारण राष्ट्रीयता की भावना तथा देश की तत्कालीन हालात पर साहित्यकार सजग रूप में विचार देते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीतियों के विरोध में जन आन्दोलन करने की चेतना जागृत करते हैं। साथ में देश के अन्दर संस्कृति जागरण भी होता है।

वर्तमान समय में आजादी के सत्तर साल बाद पुनः देश में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता की गठजोड़ पर सत्ता और स्वार्थ के लिए लोगों में नफरत का बीज बोने का कार्य मंचीय काव्य सम्मेलनों से प्रचारित –प्रसारित होता दिख रहा है तब हमें 1933 में प्रेमचंद का यह लिखा आज भी प्रासंगिक लगता है- "राष्ट्रीयता वर्तमान युग का कोढ़ है, उसी तरह जैसे मध्यकालीन युग का कोढ़ साम्प्रदायिकता थी। नतीजा दोनों का एक है। साम्प्रदायिकता अपने घेरे के अन्दर पूर्ण शांति और सुख का राज्य स्थापित कर देना चाहती थी, मगर उस घेरे के बाहर का जो संसार था, उसको नोचने –खसोटने में जरा भी मानसिक क्लेस नहीं होता था। राष्ट्रीयता भी अपने परिचित क्षेत्र के अन्दर राम राज्य का आयोजन करती है। उसके बाहर का संसार उसका शत्रु है।"[7]

'जीवन में साहित्य का स्थान' निबंध में प्रेमचंद ने साहित्य का मर्म को समझते हुए लिखा है – "हम अक्सर साहित्य का मर्म समझे बिना ही लिखना शुरू कर देते हैं। शायद हम समझते हैं कि मजेदार, चटपटी और ओजपूर्ण भाषा में लिखना ही साहित्य है। भाषा भी साहित्य का अंग है, पर स्थायी साहित्य विध्वंश नहीं करता, निर्माण करता है।.....उसके लिए केवल डिग्रियाँ और ऊँची शिक्षा काफी नहीं , चित्त की साधना, संयम, सौन्दर्य तत्व का ज्ञान इसकी कहीं ज्यादा जरुरत है।"[8]

साहित्य जीवन का मार्गदर्शक होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मनुष्य की सर्वोत्तम कृति साहित्य में लिखे हैं- "सभी मनुष्य स्वभाव से ही साहित्य सृष्टा नहीं होते पर साहित्य प्रेमी होते हैं।.....उच्छ्रंखलता और सौन्दर्य बोध में अंतर है। बिगड़े दिमाग का युवक परायी बहु-बेटियों को घूरने को भी सौन्दर्य प्रेम कहा करता है, हालाँकि यह संसार की सर्वाधिक असुंदर बात है।....सुन्दरता सामांजस्य में होती है और सामांजस्य का अर्थ होता है किसी चीज का बहुत अधिक और किसी

का बहुत कम न होना। इसमें संयम की बड़ी जरुरत है। इसलिए सौन्दर्य प्रेम में संयम होता है उच्छृंखलता नहीं। इस विषय में साहित्य ही हमारा मार्ग दर्शक हो सकता है।"[9]

वर्तमान समय में जब भारतीय जनमानस में उग्र राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता से बढ़कर प्रादेशिकता, जातीयता और धार्मिक साम्प्रदायिकता के विषाक्त कीटाणुओं ने विशेष रूप से घर कर लिया है। बाज़ारवाद, उदारीकरण, भोगवाद चरम पर है। तो हमें यह सोचने पर मजबूर होना पड़ रहा है कि हम किस तरह साहित्य का अवलोकन कर रहे हैं जो समाज में विकृत और अपसंस्कृति फैला रही है। आज भी समाज में जो कुछ लोकहित, लोकमंगलकारी चेतना का प्रभाव है वह हमें प्रेमचंद ,कबीर, रैदास, रेणु, राही आदि के साहित्य में मिलता है। अत: समाज निर्माण में, राष्ट्र निर्माण में, सांस्कृतिक एकता के निर्माण में, पशु और मानव में भेद की जानकारी साहित्य से ही प्राप्त होती है।

निष्कर्षता हम पाते हैं साहित्य का उद्देश्य समाज को दिशा प्रदान करना है। साहित्य सामाजिक आदर्शो का निर्माण करता है। भारतीय साहित्य का आदर्श त्याग और उत्सर्ग है। साहित्य स्वदेशीय होकर भी सार्वभौमिक रहता है अगर वह राष्ट्र और समाज को सही दिशा देता हो। राष्ट्र का गौरव उसके साहित्य में होता है। राष्ट्र निर्माण में युवा पीढ़ी का योगदान अहम होता है। अत: साहित्य का कार्य है सत एवं आदर्श युवा तैयार करना जो अपने देश के नाम को विश्व में उज्ज्वल करे।

सन्दर्भ :-

1. कुछ विचार,प्रेमचंद,मलिक एंड कम्पनी जयपुर-2009 , पृष्ठ- 1
2. वही.पृष्ठ-2
3. भारत-भारती,मैथिलीशरण गुप्त ,साहित्य सदन .झाँसी ,४७वा संस्करण ,2007 ,पृष्ठ- 181
4. हिंदी नवजागरण ,गजेन्द्र पाठक,विश्वविद्यालय प्रकाशन 2005 ,पृष्ठ-135
5. भारतेंदु समग्र ,पृष्ठ-1013
6. कुछ विचार,प्रेमचंद,मलिक एंड कम्पनी जयपुर-2009 , पृष्ठ- 9
7. हिंदी नवजागरण ,गजेन्द्र पाठक,विश्वविद्यालय प्रकाशन 2005 ,पृष्ठ-135-136
8. कुछ विचार,प्रेमचंद,मलिक एंड कम्पनी जयपुर-2009 , पृष्ठ- 53
9. कल्पलता, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन -1983, पृष्ठ- 147

संपर्क :

प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,खड़गपुर कॉलेज, इन्दा,
पश्चिम मिदनापुर,खड़गपुर ,पिन-721301
ranjitkumarsinhamid@gmail.com